लिखा गया है।

लघुत्रयी आयुर्वेद-वाङ्मय में संहिताग्रंन्थों का अपना विशिष्ट स्थान है और उनमें विषयों के संयोजन की ऐसी प्रक्रिया अपनायी गयी है कि किसी एक संहिता के व्यवस्थित अध्ययन से ही आयुर्वेदीय विषयों का ज्ञान हो जाय। उसी परम्परा में परवर्ती आचार्यों ने भी अपने-अपने ग्रंथो की रचना की है।

आत्रेय ने एक ही उपदेश अपने छः शिष्यों को दिया था, किन्तु उनमें 'अग्निवेश' ही अपनी प्रखर प्रतिभा के फलस्वरूप ग्रन्थ-निर्माण में अग्रणी हुए। उसी प्रकार दिवोदास के शिष्यों में सुश्रुत अग्रणी सिद्ध हुए और उन्होंने सुश्रुतसंहिता की रचना की।

तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्ति समान रूप से बुद्धिमान् और प्रतिभासम्पन्न नहीं होते, उनके लिए सरल, सुबोध शैली में लिखे गये ग्रन्थ ही बुद्धिगम्य हो सकते हैं। इसी दृष्टि से आयुर्वेदीय विषयों को सामान्य शिष्यजनों को ग्राह्य बनाने के लिए जिन ग्रन्थरत्नों का निर्माण किया गया उन्हें 'लघुत्रयी' नाम से जाना जाता है।

लघुत्रयी में—(१) माधवनिदान, (२) शार्ङ्गधरसंहिता और (३) भाव-प्रकाश की गणना की जाती है। यहाँ इन तीनों ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण देना अभीष्ट है।

(१) माधवनिदान (सातवीं शताब्दी)

इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम 'रोग-विनिश्चय' है और इसके रचयिता माधवकर हैं। अनेक प्राचीन ऋषियों के वचनों के आधार पर उनके वचनों को उद्धृत कर अथवा आवश्यकतानुसार स्वयं ही श्लोकों को बनाकर यह ग्रन्थ लिखा गया है।

ग्रन्थकार ने बिना किसी हिचक के यह स्पष्ट कहा है कि जो वैद्य अल्पबुद्धि वाले हैं और जिन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, ऐसे वैद्यों को सुखपूर्वक रोगों का ज्ञान कराने में यह ग्रन्थ समर्थ होगा। ग्रन्थकार ने अपनी इस प्रतिज्ञा को ध्यान में रखते हुए 'रोग-विनिश्चय' नामक ग्रन्थ लिखकर रोग-विज्ञान की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर दिया। अतएव यह उक्ति प्रचलित है—'निदाने माधवः श्रेष्ठः'।

विशेषताएँ—माधवकर स्वतन्त्र रूप से निदान का ग्रंथ लिखकर अजर-अमर हो गये। इन्होंने छूटे हुए विषयों पर प्रकाश डाला और अन्धकार में विलीन विषयों को प्रकाश में ले आये। जैसे—वातव्याधि का विस्तारपूर्वक स्वतंत्र वर्णन तथा वातरक्त एवं उरुस्तम्भ का अलग वर्णन किया गया है। शूलरोग के साथ परिणामशूल और अन्नद्रव शूल का वर्णन, अम्लपित्त का स्वतन्त्र वर्णन, मेदोरोग, श्लीपद, शीतपित्त, उदर्द, विस्फोट, मसूरिका आदि का पृथक् अध्यायों में वर्णन इनकी अपनी विशेषता है।

स्त्री-रोगों में असृग्दर, योनिव्यापत्, योनिकन्द, सूतिका-रोग, स्तन-रोग, स्तन्यदुष्टि का अलग-अलग वर्णन स्वतंत्र अध्यायों में किया गया है।

इन्होंने शल्य, शालाक्य, बालरोग, प्रसूति-स्त्रीरोग एवं विषरोग आदि का वर्णन कर सभी अष्टाङ्गों से सम्बद्ध निदान की व्यवस्था दे दी है।

प्रत्येक चिकित्सक के लिए यह एक ऐसा उपादेय ग्रन्थ है कि इसके अभ्यस्त होने पर किसी भी रोग के निदान का प्रश्न सरलता से समाहित हो जाता है। इसकी विजयरक्षित-कृत मधुकोष एवं वाचस्पति-कृत आतकदर्पण टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

(२) शार्ङ्गधरसंहिता (तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध)

शार्ङ्गधर नाम के अनेक आचार्य हुए हैं, कोई दार्शनिक, कोई ज्योतिर्विद्, कोई नाटककार और कोई आयुर्वेदज्ञ हैं। इनमें दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर ही वैद्य हैं और उन्होंने सोढल (१२वीं शताब्दी) की शैली पर 'शार्ङ्गधरसंहिता' की रचना की। बत्तीस अध्यायों और छब्बीस सौ श्लोकों में निहित यह संहिता तीन खण्डों में विभक्त है।

मध्यकाल की चिकित्सा-प्रवृत्तियों और सामाजिक-धारणाओं की प्रकाशिका यह संहिता तत्कालीन चिकित्सकों के लिए वरदान सिद्ध हुई, क्योंकि इस संहिता में रस-शास्त्रीय औषधियाँ, औषधकल्पनाएँ तथा नाड़ी-परीक्षा आदि अष्टविध रोगविज्ञान के उपाय और नानाविध चिकित्सा-कर्मों का व्यावहारिक रूप से प्रतिपादन किया गया है।

यह संहिता अपने जन्मकाल से ही अतीव लोकप्रिय रही और आज भी उसकी उपादेयता अक्षुण्ण बनी हुई है।

विशेषताएँ—

१. नाड़ी-परीक्षा का सर्वप्रथम उल्लेख इसी ग्रन्थ में मिलता है।

२. इसमें दीपन-पाचन आदि की स्पष्ट परिभाषाएँ लिखी गयी हैं।

३. नवीन द्रव्य अहिफेन, अकरकरा, भांग आदि का प्रयोग होने लगा।

४. दोष-धातु-मलों का निरूपण तथा वायु की प्रधानता कही गयी है।

५. श्वसन कर्म द्वारा गृहीत विष्णुपदामृत (आक्सीजन) संपूर्ण शरीर का पोषण तथा अग्नि सन्धुक्षण करता है, यह विषय भी है। रक्तज रोगों को दोषज रोगों से पृथक् गिना गया है।

६. रोगों का विस्तृत वर्गीकरण किया गया है।

७. विषद्रव्यों का चिकित्सा में प्रयोग किया जाने लगा।

८. रस, भस्मों और रसौषधियों का वर्णन किया गया है।

९. चिकित्सा के विविध प्रकार, जैसे—पंचकर्म, शिरोवस्ति, रक्तमोक्षण आदि का वर्णन किया गया है।

१०. कतिपय रोगों में विशिष्ट औषधियों तथा औषध योगों का निर्देश किया गया है।

११. वाजीकरण के विविध प्रकारों का तथा प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

इस संहिता की उपादेयता के ही कारण इसका हिन्दी, गुजराती, मराठी एवं बंगला भाषाओं में अनुवाद हुआ है। आढमल्ल-कृत दीपिका, काशीराम-कृत गूढ़ार्थ-दीपिका एवं रुद्रभट-कृत आयुर्वेददीपिका टीकाएँ मुख्य हैं।

(३) भावप्रकाश (सोलहवीं शताब्दी)

इस ग्रन्थ के रचयिता भावमिश्र हैं। इनके पिता का नाम लटकन मिश्र था। यह जाति से ब्राह्मण थे, जैसा कि इनके नाम के साथ मिश्र की उपाधि से प्रकट होता है।

इन्होंने प्राचीन संहिताओं के मार्ग पर चलते हुए नवीन विचारों तथा नवीन द्रव्यों का उल्लेख किया है। लघुत्रयी में यह अन्तिम और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। चिकित्सक-समुदाय में यह लोकप्रिय ग्रन्थ है।

भावप्रकाश में प्राचीन ज्ञान के साथ नवीन ज्ञानराशि का संयोजन कर आयुर्वेद के विविध विषयों को समुन्नत तथा विकसित किया गया है।

इसमें आयुर्वेद की स्पष्ट परिभाषा दी गयी है। 'वियद्-वायु-वह्नि-वारि-वसुन्धरा' (आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी), इन वकारादि शब्दों से पञ्च महाभूतों के नाम दिये गये हैं।

इस ग्रन्थ के निघण्टु भाग में सर्वाधिक वैशिष्ट्य है। जिसमें उनके समय तक प्रचलित अनेकानेक देशी-विदेशी द्रव्यों के गुण-धर्म का उल्लेख कर द्रव्यगुणशास्त्र को समृद्ध किया है। पारसीकवचा, पिण्डखजूर, अहिफेन, भंगा, पुदीना, लताकस्तूरी आदि बहुत-से द्रव्यों का आयुर्वेद में समावेश किया गया है। कर्पूर, कस्तूरी एवं कुंकुम के भेदोपभेदों का वर्णन किया गया है। अष्टवर्ग तथा उसके प्रतिनिधि द्रव्यों का उल्लेख है। खनिजों के भेदों का वर्णन है।

सुलभ और उपयोगी कदली-फल के विविध भेद बतलाये गये हैं। औषधद्रव्यों के मिलने में कठिनाई होने पर उनके समान गुणधर्म वाले प्रतिनिधि द्रव्यों का भी वर्णन है। द्रव्यगुण के क्षेत्र में उनकी देन आज भी पूर्ववत् लोकप्रिय है।

चिकित्सा के क्षेत्र में इनके अनेक नवीन योगदान हैं। इसमें नये रोगों का वर्णन किया गया है। जैसे—फिरंग, मसूरिका (शीतला), सोमरोग, मूत्रातीसार, शय्यामूत्र आदि का वर्णन किया गया है।

वाजीकरण के प्रसंग में कामेश्वरमोदक, आकारकभादि चूर्ण, मृतसंजीवनी सुरा और बाह्य प्रयोगार्थ श्रीगोपालतेल का वर्णन है। चिकित्सा में अहिफेनासव, कर्पूरासव आदि नये योगों का प्रयोग बतलाया गया है।

रसौषधियों के भी प्रचुर प्रयोग कहे गये हैं। आवश्यकतानुसार सभी प्रकार की कल्पनाओं में औषधों का प्रयोग बतलाया गया है। आज से ४०-५० वर्ष पूर्व तक अधिकांश वैद्य एकमात्र भावप्रकाश की पुस्तक के सहारे चिकित्सा और अपनी आजीविका चलाते थे।

शालिग्राम-कृत हिन्दी टीका के साथ बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस से 'भावप्रकाश' का १९०६ ई० में प्रकाशन हुआ। अन्य भी कई हिन्दी टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं। इसके निघण्टु भाग का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है, जिससे भावप्रकाश की अधिकाधिक प्रचार में वृद्धि हुई है।

लघुत्रयी की उपादेयता—प्रौढ़ संस्कृत ज्ञान के अभाव में चरक, सुश्रुत और वाग्भट का अध्ययनाध्यापन अत्यन्त दुरूह था और उनके अध्ययन का क्षेत्र भी सीमित था। दूसरी ओर सामान्य चिकित्सक-वृन्द को लघुत्रयी के अध्ययन से व्यवहारोपयोगी चिकित्सा का ज्ञान अर्जित कर लेना सुगम था और इनके ग्रन्थों का अध्ययनाध्यापन में अधिकांशतः प्रचलन था। आयुर्वेद विद्यालयों के माध्यम से मिश्रप्रणाली के पाठ्यक्रम में विषयप्रधान अध्ययन होने लगा और ग्रन्थप्रधान अध्ययन गौण हो गया, जिससे लघुत्रयी के ग्रन्थों का जो स्वतन्त्र स्थान था, वह नहीं रहा।

तत्कालीन विद्वान् जिन ग्रन्थों के पण्डित होते थे, उन्हें वे ग्रन्थ आद्योपान्त टीका और भाष्य के साथ कण्ठस्थ होते थे और उन ग्रन्थों के व्यावहारिक पक्ष का भी उन्हें प्रौढ़ ज्ञान होता था। लघुत्रयी के ग्रंथों में शार्ङ्गधर का प्रथम स्थान है। इस एक ही ग्रन्थ को विधिवत् पढ़कर बहुत-से चिकित्सक चिकित्सा-व्यवसाय करने का सामर्थ्य उपार्जित कर लेते थे।